.. satyanArAyaNa vrata kathAya ..

॥ सत्यनारायण व्रत कथाय ॥

कथा प्रारंभ
प्रथमोऽध्यायः
व्यास उवाच
एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः ।
प्रपच्छुर्मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु ॥ १॥
ऋषय उवाच
व्रतेन तपसा किं वा प्राप्यते वांछितं फलम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व महामुने ॥ २॥
सूत उवाच
नारदेनैव संपृष्टो भगवान्कमलापतिः ।
सुरर्षये यथैवाह तच्छृणुध्वं समाहिताः ॥ ३॥
श्री व्यासजी ने कहा- एक समय नैमिषारण्य तीर्थ में शौनक आदि
हजारों ऋषि-मुनियों ने पुराणों के महाज्ञानी श्री सूतजी से पूछा
कि वह व्रत-तप कौन सा है, जिसके करने से मनवांछित फल
प्राप्त होता है । हम सभी वह सुनना चाहते हैं । कृपा कर सुनाएँ ।
श्री सूतजी बोले- ऐसा ही प्रश्न नारद ने किया था । जो कुछ भगवान
कमलापति ने कहा था, आप सब उसे सुनिए ।
एकदा नारदो योगी परानुग्रहकांक्षया ।
पर्यटन्विविधाँल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागतः ॥ ४॥
ततो दृष्ट्वा जनान्सर्वान्नानाक्लेशसमन्वितान् ।
नानायोनि समुत्पान्नान् क्लिश्यमानान्स्वकर्मभिः ॥ ५॥
केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद्ध्रुवम् ।
इति संचिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ॥ ६॥
तत्र नारायणंदेवं शुक्लवर्णचतुर्भुजम् ।
शंख चक्र गदा पद्म वनमाला विभूषितम् ॥ ७॥
परोपकार की भावना लेकर योगी नारद कई लोकों की यात्रा करते-करते
मृत्यु लोक में आ गए । वहाँ उन्होंने देखा कि लोग भारी कष्ट भोग
रहे हैं । पिछले कर्मों के प्रभाव से अनेक योनियों में उत्पन्न
हो रहे हैं । दुःखीजनों को देख नारद सोचने लगे कि इन प्राणियों
का दुःख किस प्रकार दूर किया जाए । मन में यही भावना रखकर
नारदजी विष्णु लोक पहुँचे । वहाँ नारदजी ने चार भुजाधारी
सत्यनारायण के दर्शन किए, जिन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्म

अपनी भुजाओं में ले रखा था और उनके गले में वनमाला प्णअड़ी थी ।
दृष्टवा तं देवदेवेशंस्तोतुं समुपचक्रमे ।
नारद उवाच
नमोवांगमनसातीत- रूपायानंतशक्तये ।
आदिमध्यांतहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ ८॥
सर्वेषामादिभूताय भक्तानामार्तिनाशिने ।
श्रुत्वा स्तोत्रंततो विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत् ॥ ९॥
श्रीभगवानुवाच
किमर्थमागतोऽसि त्वं किंते मनसि वर्तते ।
कथायस्व महाभाग तत्सर्वं कथायमिते ॥ १०॥
नारद उवाच
मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः ।
ननायोनिसमुत्पन्नाः पच्यन्ते पापकर्मभिः ॥ ११॥
नारदजी ने स्तुति की और कहा कि मन-वाणी से परे, अनंत शक्तिधारी,
आपको प्रणाम है । आदि, मध्य और अंत से मुक्त सर्वआत्मा के आदिकारण
श्री हरि आपको प्रणाम । नारदजी की स्तुति सुन विष्णु भगवान ने
पूछा- हे नारद! तुम्हारे मन में क्या है? वह सब मुझे बताइए ।
भगवान की यह वाणी सुन नारदजी ने कहा- मर्त्य लोक के सभी प्राणी
पूर्व पापों के कारण विभिन्न योनियों में उत्पन्न होकर अनेक प्रकार
के कष्ट भोग रहे हैं ।
तत्कथं शमयेन्नाथ लघूपायेन तद्वद् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कृपास्ति यदि ते मयि ॥ १२॥
श्रीभगवानुवाच
साधु पृष्टं त्वया वत्स लोकानुग्रहकांक्षया ।
यत्कृत्वा मुच्यते मोहत्तच्छृणुष्व वदामि ते ॥ १३॥
व्रतमस्ति महत्पुण्यं स्वर्गे मर्त्ये च दुर्लभम् ।
तव स्नेहान्मया वत्स प्रकाशः क्रियतेऽधुना ॥ १४॥
यदि आप मुझ पर कृपालु हैं तो इन प्राणियों के कष्ट दूर करने का
कोई छोटा-सा उपाय बताएँ । मैं वह सुनना चाहता हूँ । श्री भगवान
बोले हे नारद! तुम साधु हो । तुमने जन-जन के कल्याण के लिए अच्छा
प्रश्न किया है । जिस व्रत के करने से व्यक्ति मोह से छूट जाता है,
वह मैं तुम्हें बताता हूँ । यह व्रत स्वर्ग और मृत्यु लोक दोनों
में दुर्लभ है । तुम्हारे स्नेहवश में इस व्रत का विवरण देता हूँ ।
सत्यनारायणस्यैवं व्रतं सम्यग्विधानतः ।
कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा परत्र मोक्षमाप्युयात् ।
तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं नारदो मुनिरब्रवीत् ॥ १५॥

नारद उवाच
किं फलं किं विधानं च कृतं केनैव तद्व्रतम् ।
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि कदा कार्यं हि तद्व्रतम् ॥१६॥
श्रीभगवानुवाच
दुःखशोकादिमनंधनधान्यप्रवर्धनम् ॥१७॥
सौभाग्यसन्ततिकरं सर्वत्रविजयप्रदम् ।
यस्मिन्कस्मिन्दिने मर्त्यो भक्ति श्रद्धासमन्वितः ॥१८॥
सत्यनारायण का व्रत विधिपूर्वक करने से तत्काल सुख मिलता है और अंततः मोक्ष का अधिकार मिलता है । श्री भगवान के वचन सुन नारद ने कहा कि प्रभु इस व्रत का फल क्या है? इसे कब और कैसे धारण किया जाए और इसे किस-किस ने किया है । श्री भगवान ने कहा दुःख-शोक दूर करने वाला, धन ब्णअढ़ाने वाला । सौभाग्य और संतान का दाता, सर्वत्र विजय दिलाने वाला श्री सत्यनारायण व्रत मनुष्य किसी भी दिन श्रद्धा भक्ति के साथ कर सकता है ।
सत्यनारायणं देवं यजेच्चैव निशामुखे ।
ब्राह्मणैर्बान्धवैश्चैव सहितो धर्मतत्परः ॥१९॥
नैवेद्यं भक्तितो दद्यात्सपादं भक्ष्यमुत्तमम् ।
रंभाफलं घृतं क्षीरं गोधूममस्य च चूर्णकम् ॥२०॥
अभावेशालिचूर्णं वा शर्करा वा गुडस्तथा ।
सपादं सर्वभक्ष्याणि चैकीकृत्य निवेदयेत् ॥२१॥
विप्राय दक्षिणां दद्यात्कथां श्रुत्वाजनैः सह ।
ततश्चबन्धुमिः सार्धं विप्रांश्च प्रतिभोजयेत् ॥२२॥
सायंकाल धर्मरत हो ब्राह्मण के सहयोग से और बंधु बांधव सहित श्री सत्यनारायण का पूजन करें । भक्तिपूर्वक खाने योग्य उत्तम प्रसाद (सवाया) लें । यह प्रसाद केले, घी, दूध, गेहूँ के आटे से बना हो । यदि गेहूँ का आटा न हो, तो चावल का आटा और शकर के स्थान पर गुड़ मिला दें । सब मिलाकर सवाया बना नैवेद्य अर्पित करें । इसके बाद कथा सुनें, प्रसाद लें, ब्राह्मणों को दक्षिणा दें और इसके पश्चात बंधु-बांधवों सहित ब्राह्मणों को भोजन कराएँ ।
प्रसादं भक्षयभ्दक्त्या नृत्यगीतादिकं चरेत् ।
ततश्च स्वगृहं गच्छेत्सत्यनारायणं स्मरन् ॥२३॥
एवंकृते मनुष्याणां वांछासिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
विशेषतः कलियुगे लघूपायऽस्ति भूतले ॥२४॥
प्रसाद पा लेने के बाद कीर्तन आदि करें और फिर भगवान सत्यनारायण का स्मरण करते हुए स्वजन अपने-अपने घर जाएँ । ऐसे व्रत-पूजन करने वाले की मनोकामना अवश्य पूरी होगी । कलियुग में

विशेष रूप से यह छोटा-सा उपाय इस पृथ्वी पर सुलभ है ।
॥ इति श्रीस्कन्द पुराणे रेवाखण्डे
सत्यनारायण व्रत कथायां प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥
द्वितीयोऽध्यायः
सूत उवाच
अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कृतं येन पुरा द्विज ।
कश्चित् काशीपुरे रम्ये ह्यासीद्विप्रोऽतिनिर्धनः ॥ १॥
क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलो भूत्वा नित्यं बभ्राम भूतले ।
दुःखितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा भगवान्ब्राह्मणप्रियः ॥ २॥
वृद्धब्राह्मणरूपस्तं पप्रच्छ द्विजमादरात् ।
किमर्थं भ्रमसे विप्र महीं नित्यं सुदःखितः
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां द्विजसत्तम ॥ ३॥
सूतजी ने कहा- इस व्रत को पहले किसने किया? अब मैं आपको सुनाता हूँ । बहुत रमणीय काशीपुरी में एक निर्धन ब्राह्मण रहता था । वह भूख-प्यास से दुखित यहाँ-वहाँ भटकता रहता था । इस ब्राह्मण को दुःखी देख एक दिन भगवान ने स्वयं एक बूढ़े ब्राह्मण का वेश धारण कर, इस ब्राह्मण से आदर के साथ प्रश्न किया । हे विप्र! तुम सदा ही दुःखी रह पृथ्वी पर क्यों भटकते रहते हो । मैं यह जानना चाहता हूँ ।
ब्राह्मण उवाच
ब्राह्मणोऽति दरिद्रोऽहं भिक्षार्थं वै भ्रमे महीम् ॥ ४॥
उपायं यदि जानासि कृपया कथय प्रभो ।
वृद्धब्राह्मण उवाच
सत्यनारायणो विष्णुर्वांछितार्थफलप्रदः ॥ ५॥
तस्य त्वं पूजनं विप्र कुरूष्व व्रतमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा सर्वदुखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥ ६॥
विधानं च व्रतस्यापि विप्रायाभाष्य यत्नतः ।
सत्यनारायणो वृद्धस्तत्रैवान्तरधीयत् ॥ ७॥
तद्व्रतं संकरिष्यामि यदुक्तंब्राह्मणेन वै ।
इति संचिंत्य विप्रोऽसौ रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ॥ ८॥
निर्धन ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि वह अत्यंत निर्धन ब्राह्मण है । और भिक्षा के लिए पृथ्वी पर भटकता है । अगर आप इस निर्धनता को मिटाने का उपाय जानते हों तो कृपया बताएँ । बूढ़े ब्राह्मण ने कहा कि सत्यनारायण स्वरूप विष्णु, मन चाहा फल देते हैं । अतः विप्र तुम उनका उत्तम व्रत-पूजन करो । ऐसा व्रत-पूजन करने से मनुष्यों के सब दुःख दूर हो जाते हैं । सत्य व्रत का विधान ठीक

तरह बताकर वृद्ध ब्राह्मण बनकर आए भगवान सत्यनारायण अंतर्ध्यान हो गए । निर्धन ब्राह्मण ने कहा कि वह बूढ़े ब्राह्मण द्वारा बताया व्रत करेगा । इसी विचार के कारण उसे रात्रि में नींद नहीं आई ।

ततः प्रातः समुत्थाय सत्यनारायणव्रतम् ।
करिष्य इति संकल्प्य भिक्षार्थमगमद् द्विजः ॥ ९ ॥
तस्मिन्नेव दिने विप्रः प्रचुरं द्रव्यमाप्तवान् ।
तेनैव बन्धुभिः सार्धं सत्यस्य व्रतमाचरत् ॥ १० ॥
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः सर्वसंपत्समन्वितः ।
बभूव स द्विजश्रेष्ठो व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥ ११ ॥
ततः प्रभृति कालं चम मासि व्रतं कृतम् ।
एवं नारायणेवेकतिम व्रतं कृत्वा द्विजोत्तमः ॥ १२ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दुर्लभं मोक्षमाप्तवान् ।
व्रतमस्य यदा विप्राः पृथिव्यां संकरिष्यति ॥ १३ ॥

दूसरे दिन वह यह संकल्प लेकर कि मैं श्री सत्यनारायण का व्रत करूँगा भिक्षा माँगने निकला । उस दिन भिक्षा में निर्धन ब्राह्मण को ब्णअड़ी मात्रा में दान प्राप्त हुआ । इसी धन से ब्राह्मण ने अपने बंधु-बांधव सहित श्री सत्यनारायण भगवान का व्रत किया । व्रत के प्रभाव से दुःख से मुक्ति पाकर वह सम्पत्तिवान हो गया । तब से वह ब्राह्मण हर माह सत्यनारायण व्रत करता रहा । सब पापों से मुक्त हो, मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

तदैव सर्वदुःखं तु मनुजस्य विनश्यति ।
एवं नारायणेनोक्तं नारदाय महात्मने ॥ १४ ॥
मया तत्कथितं विप्राः किमन्यत्कथयामि वः ।
ऋषयः उवाच
तस्माद्विप्राच्छ्रुतं केन पृथिव्यां चरितं मुने ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः श्रद्धाऽस्माकं प्रजायते ॥ १५ ॥
सूत उवाच
श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे व्रतं येन कृतं भुवि ।
एकदा स द्विजवरो यथाविभवविस्तारै ॥ १६ ॥
बन्धुभिः स्वजनैः सार्धं व्रतं कर्तुं समुद्यतः ।
एतस्मिन्नंतरे काले काष्ठक्रेता समागमत् ॥ १७ ॥

हे विप्र! पृथ्वी पर जो कोई भी इस व्रत को करेगा, उसके सभी दुःख नष्ट होंगे । श्रीमन् नारायण ने यही श्री नारदजी से कहा था । श्री सूतजी बोले यह सब तो मैंने कहा अब और क्या बोलूँ । तब ऋषिगण बोले कि इस ब्राह्मण से सुनकर यह सत्यव्रत और

किसने किया है । यह जानने की हमारी इच्छा है । सूतजी बोले- अच्छा ऋषियों अन्य जिन लोगों ने यह व्रत किया, उनके बारे में सुनो । यही ब्राह्मण पर्याप्त धन आ जाने के कारण एक बार सत्यनारायण का व्रत कर रहा था कि एक लक़ड़हारा आया ।

बहि:काष्ठं च संस्थाप्य विप्रस्य गृहमाययौ ।
तृष्णाया पीडितात्मा च दृष्ट्वा विप्रं कृतव्रतम् ॥ १८॥
प्रणिपत्य द्विजं प्राह किमिदं त्वया ।
कृते किं फलमाप्नोति विस्तराद्वद मे प्रभो ॥ १९॥
विप्र उवाच
सत्यनारायणेस्येदं व्रतं सर्वेप्सितप्रदम् ।
तस्य प्रसादान्मे सर्वं धनधान्यादिकं महत् ॥ २०॥
तस्मादेतद्व्रतं ज्ञात्वा काष्ठक्रेताऽतिहर्षितः ।
पपौ जलं प्रसादं च भुक्त्वा च नगरं ययौ ॥ २१॥

लक़ड़ी का बोझा बाहर रख प्यास मिटाने वह ब्राह्मण के घर में गया । उसने ब्राह्मण को व्रत करते देखा । ब्राह्मण को प्रणाम कर उस लक़ड़हारे ने पूछा कि हे प्रभो! आप क्या कर रहे हैं? इस पूजन का क्या फल है? विस्तारसे कहें । ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मनवांच्छित सभी फलों को देने वाला यह सत्यनारायण का व्रत है । इन्हीं की कृपा से मेरा यह धन-धान्य है । यह जान लक़ड़हारा बहुत प्रसन्न हुआ और प्रसाद ले, जल पी, लक़ड़ी बेचने शहर में चला गया ।

सत्यनारायणंदेवं मनसाऽसौचिन्तयतं ।
काष्ठंविक्रयतो ग्रामे प्राप्यते चाद्ययद्धनम् ॥ २२॥
तेनैव सत्यदेवस्य करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।
इति संचिन्त्य मनसा काष्ठं धृत्वा तु मस्तके ॥ २३॥
जगामनगरे रम्ये धनिनां यत्र संस्थितिः ।
तद्दिने काष्ठमूल्यं च द्विगुणं प्राप्तवानसौ ॥ २४॥
ततः प्रसन्नहृदयः सुपक्वं कदलीफलम् ।
शर्कराघृतदुग्धं च गौधूमस्य च चूर्णकम् ॥ २५॥

लक़ड़ी का बोझा सिर पर लेकर उसने विचार किया कि इन लकिड़यों के बेचने पर आज जो धन मिलेगा, उससे वह सत्यनारायण का पूजन करेगा । वह सत्यनारायण का उत्तम व्रत करेगा यह मन में विचार कर लक़ड़हारे ने लक़ड़ी का बोझ सिर पर धारण किया और निकल प्णअड़ा । वह धनवान लोगों की बस्ती में गया, जहाँ उसे अपनी लकिड़यों की दूनी कीमत मिली । तब वह प्रसन्न होकर पके केले, शकर, घी, दूध और गेहूँ का आटा सवाया बनवाकर अपने घर ले आया ।

कृत्वैकत्र सपादं च गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ।
ततो बन्धून् समाहूय चकार विधिना व्रतम् ॥ २६॥
तद्व्रतस्य प्रभावेण धनपुत्रान्वितोऽभवत् ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा चांते सत्यपुरं ययौ ॥ २७॥
वहाँ अपने भाई-बंधुओं के साथ मिलकर विधिपूर्वक व्रत किया ।
व्रत के प्रभाव से वह पुत्रवान, धनवान बना और इस लोक में
सुख भोगकर अंत में सत्यनारायण के लोक में गया ।
॥ इति श्रीस्कन्द पुराणे रेवाखण्डे
सत्यनारायण व्रत कथायां द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥
तृतीयोऽध्यायः
सूत उवाच
पुनरग्रे प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
पुरा उल्कामुखो नाम नृपश्चासीन्महामतिः ॥ १॥
जितेन्द्रियःसत्यवादी ययौ देवालयंप्रति ।
दिनेदिने धनं दत्त्वा द्विजान्संतोषयन्मुधीः ॥ २॥
भार्यातस्य प्रमुग्धा च सरोजवदना सती ।
भद्रशीला नदी तीरे सत्यस्य व्रतमाचरत् ॥ ३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र साधुरेकः समागतः ।
वाणिज्यार्थं बहुधनैरनेकैः परिपूरितः ॥ ४॥
सूतजी बोले- मुनियों! अब हम आगे की कथा सुनाते हैं । सभी उत्तम मुनि
श्रवण करें । पूर्व समय में उल्कामुख नाम का बुद्धिमान राजा था ।
वह जितेन्द्रिय एवं सत्यवादी था । वह नित्य देवालयों में जाता और
दान-दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों को संतुष्ट रखता था । उसकी कमल
जैसे मुखवाली सती रानी थी । ये राजा-रानी भद्रशीला नदी के तट
पर सत्यनारायण का व्रत कर रहे थे । ऐसे समय मेएं साधु नाम
का एक वैश्य धन-धान्य से भरी नाव ले वहाँ पहुँचा ।
नावं संस्थाप्य तत्तीरे जगाम नृपतिं प्रति ।
दृष्ट्वा स व्रतिनं भूपं प्रपच्छ विनयान्वितः ॥ ५॥
साधुरूवाच
किमिदं कुरूषे राजन्भक्तियुक्तेन चेतसा ।
प्रकाशं कुरू तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ६॥
राजोवाच
पूजनं क्रियते साधो विष्णोरतुलतेजसः ।
व्रतं च स्वजनैः सार्धं पुत्राद्या वाप्तिकाम्यया ॥ ७॥
भूपस्य वचनं श्रुत्वा साधुः प्रोवाच सादरम् ।
सर्वं कथय मे राजन्करिष्येऽहं तवोदितम् ॥ ८॥

वैश्य नाव को किनारे पर लगा, सत्यव्रत कर रहे राजा को देखा ।
उस वैश्य ने विनयपूर्वक राजा से प्रश्न किया । साधु नामक वैश्य
बोला- ग्हे राजन आप भक्ति के साथ क्या कर रहे हैं । मैं यह सुनना
चाहता हूँ'। राजा बोला- ग्हे साधु नामक वैश्य! हम बंधु-बांधवों
के साथ विष्णु भगवान सम तेजस्वी श्री सत्यनारायण का व्रत और
पूजन पुत्रादि की प्राप्ति के लिए कर रहे हैं'। राजा के वचन सुनकर
साधु ने विनयपूर्वक कहा-ग्आप इस व्रत के संबंध में सारा विधान
मुझे भी कहिए । मैं भी यह व्रत करूँगा'
ममापि सन्ततिर्नास्ति ह्येतस्माज्जायते ध्रुवम् ।
ततो निवृत्य वाणिज्यात्सानंदो गृहमागतः ॥ ९ ॥
भार्यायै कथितं सर्वं व्रतं संततिदायकम् ।
तदा व्रतं करिष्यामि यदा मे संततिर्भवेत् ॥ १० ॥
इति लीलावतीं प्राह पत्नीं साधुः स सत्तमः ।
एकस्मिन्दिवसे तस्यभार्या लीलावती सती ॥ ११ ॥
भतृर्युक्तानंदचित्ताऽभवद्धर्म-परायणा ।
र्गभिणी साभवत्तस्य भार्या सत्यप्रसादतः ॥ १२ ॥
दशमे मासि वै तस्याः कन्या रत्नमजायत ।
दिने दिने सा ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ १३ ॥
मेरे भी कोई संतान नहीं है । क्या इस व्रत के प्रभाव से मेरे घर
भी संतान होगी? इसके बाद वह खुशी-खुशी अपने घर आया । घर
आकर उसने अपनी पत्नी से सबकुछ कहा । साधु बोला यदि हमारे घर
संतान होगी तो हम भी सत्यनारायण का व्रत करेंगे । पतिव्रता स्त्री
लीलावती ऐसा सुनकर बहुत आनंदित हुई । सत्यनारायण के प्रसाद
से संसारवासियों की तरह वह भी गर्भवती हुई । दसवें महीने में
लीलावती ने एक कन्या को जन्म दिया । यह कन्या चंद्रमा की कला की
तरह दिन-दिन ब्णअढ़ने लगी ।
नाम्नाकलावती चेति तन्नामकरणं कृतम् ।
ततो लीलावती प्राह स्वामिनं मधुरं वचः ॥ १४ ॥
न करोषि किमर्थं वै पुरा संकल्पितव्रतम् ।
साधुरूवाच
विवाह समये त्वस्या करिष्यामि व्रतं प्रिये ॥ १५ ॥
इति भार्यां समाश्वास्य जगाम नगरं प्रति ।
ततः कलावती कन्या ववृधे पितृवेश्मनि ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा कन्यांततः साधुर्नगरे सखिभिः सह ।
मंत्रयित्वा द्रुतं दूतं प्रेषयामास धर्मवित् ॥ १७ ॥
विवाहार्थं च कन्यायाः वरं श्रेष्ठंविचारय ।

तेनाज्ञप्तश्च दूतोऽसौ कांचनं नगरं ययौ ॥ १८ ॥
इस कन्या का नाम कलावती रखा गया । अब लीलावती ने अपने पति से मधुर वचन कहे । हे स्वामी! आप पहले किए संकल्प के अनुसार सत्यनारायण भगवान का व्रत क्यों नहीं करते । साधु नामक वैश्य बोला- प्रिये! कन्या के विवाह के समय यह व्रत कर लेंगे । इतना कहकर वह वैश्यनगर को चला । इधर कलावती कन्या पिता के घर रहकर ब्णअड़ी होने लगी । एक दिन साधु नामक वैश्य ने अपनी कन्या को सहेलियों के साथ नगर में देखा । धर्म-मर्यादा को जानने वाले साधु वैश्य ने तत्काल विचार कर कन्या के योग्य श्रेष्ठ वर खोजने हेतु दूत भेजे । वैश्य की आज्ञा पाकर दूत सुसम्पन्न कांचन नगर गए ।

तस्मादेकं वणिक्पुत्रं समादायागतो हि सः ।
दृष्ट्वा तु सुंदरं बालं वणिक्पुत्रं गुणान्वितम् ॥ १९ ॥
ज्ञातिभिर्बन्धुभिः सार्धं परितुष्टेन चेतसा ।
दत्तावान्साधु पुत्राय कन्यां विधिविधानतः ॥ २० ॥
ततोऽभाग्यवशात्तेन विस्मृतं व्रतमुत्तमम् ।
विवाहसमये तस्यास्तेनरूष्टोऽभवत्प्रभुः ॥ २१ ॥
ततः कालेनकियता निज कर्मविशारदः ।
वाणिज्यायगतः शीघ्रं जामातृसहितो वणिक् ॥ २२ ॥
रत्नसारपुरे रम्ये गत्वा सिंधुसमीपतः ।
वाणिज्यमकरोत्साधुर्जामात्रा श्रीमता सह ॥ २३ ॥

वहाँ से ब्णअड़ा गुणवान, सुंदर वैश्य पुत्र, कन्या के योग्य वर देखा और उसे ले आए । वैश्य पुत्र को देख साधु वैश्य अपने परिचित, बंधु-बांधवों सहित संतुष्ट हुआ । अपनी कन्या का विधिपूर्वक विवाह उसी के साथ कर दिया । लेकिन दुर्भाग्यवश उस समय वह साधु नामक वैश्य सत्यनारायण व्रत को भूल गया । परिणामस्वरूप श्री सत्यनारायण भगवान रूष्ट हो गए । कुछ समय बीता । अपने काम में होशियार धनिक वैश्य अपने जामाता को साथ ले शीघ्र व्यापार के लिए चल प्णअड़ा । वह समुद्र के पास सुंदर रत्नसार नगर में गया । वहाँ जाकर वह धनवान वैश्य अपने जामाता के साथ व्यापार करने लगा ।

तौ गतौ नगरे रम्ये चंद्रकेतोनृर्पस्य च ।
एतस्मिन्नेव काले तु सत्यनारायणः प्रभुः ॥ २४ ॥
भ्रष्टप्रतिज्ञमालोक्य शापं तस्मै प्रदत्तवान् ।
दारूणं कठिनं चास्य महद्दुःखं भविष्यति ॥ २५ ॥
एकस्मिन्दिवसे राज्ञो धनमादाय तस्करः ।
तत्रैव चागतश्चौरो वणिजौ यत्र संस्थितौ ॥ २६ ॥

तत्पश्चाद्धावकान्दूतान्दृष्टवा भीतेन चेतसा ।
धनंसंस्थाप्य तत्रैव सतुशीघ्रमलक्षितः ॥ २७॥
ततोदूतः समायाता यत्रास्ते सज्जनो वणिक् ।
दृष्ट्वा नृपधनं तत्र बद्ध्वाऽऽनतौ वणिक्सुतौ ॥ २८॥
इस सुंदर नगर का राजा चंद्रकेतु था । उस समय सत्यनारायण प्रभु ने प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होने वाले वैश्य को कठिन शाप दिया । कि वैश्य बहुत कष्ट को प्राप्त करे । एक दिन राजा की संपत्ति चुराकर चोर उस स्थान पर आया जहाँ वैश्य और उसका दामाद ठहरे थे । राजा के दूतों को अपना पीछा करते देख चोर डरकर, धन वहीं छोड़ भाग गया । पीछे दौड़ते राजा के दूतों ने राजा की संपत्ति को वहाँ देखा और दोनों वैश्यों को बंदी बनाकर राजा के पास ले गए ।
हर्षेण धावमानाश्च प्रोचुनृर्पसमीपतः ।
तस्करौ द्वौ समानीतौ विलोक्याज्ञापय प्रभो ॥ २९॥
राज्ञाऽऽज्ञप्तास्ततः शीघ्रं दृढं बद्ध्वा तु तावुभौ ।
स्थापितौ द्वौ महादुर्गे कारारेऽविचारतः ॥ ३०॥
मायया सत्यदेवस्य न श्रुतं कैस्तयोर्वचः ।
अतस्तयोर्धनं राज्ञा गृहीतं चंद्रकेतुना ॥ ३१॥
तच्छापाच्च तयोर्गेहे भार्या चैवातिदुःखिता ।
चौरेणापहृतं सर्वं गृहे यच्च स्थितं धनम् ॥ ३२॥
आधिव्याधिसमायक्ता क्षुत्पिपासातिदुःखिता ।
अन्नचिंतापरा भूत्वा बभ्राम च गृहे गृहे ।
कलावती तु कन्याऽपि बभ्राम प्रतिवासरम् ॥ ३३॥
हर्षित होकर दूत राजा से बोले कि वे दो चोर लाए हैं । आप उनके लिए आज्ञा दें । राजा की आज्ञा से शीघ्र ही उन्हें बंदी बनाकर, बिना विचार किए जेल में डाल दिया । श्री सत्यनारायण की माया से वैश्यों की बात किसी ने नहीं सुनी । राजा चंद्रकेतु ने वैश्यों का सारा धन छीन लिया । शापवश वैश्य की पत्नी भी बहुत दुःखी हो गई । घर की संपत्ति चोर ले गए । वैश्य की स्त्री शरीर से रूग्ण, मन में चिंता लिए, भूख से दुःखी, अन्न पाने के लिए घर-घर भटकने लगी । इसी प्रकार कलावती कन्या भी ।
एकस्मिन्दिवसे याता क्षुधार्ता द्विजमन्दिरम् ।
गत्वाऽपश्यद् व्रतं तत्र सत्यनारायणस्य च ॥ ३४॥
उपविश्य कथां श्रुत्वा वरं प्रार्थितवत्यपि ।
प्रसादभक्षणं कृत्वा ययौ रात्रौ गृहं प्रति ॥ ३५॥
माता कलावतीं कन्यां कथयामास प्रेमतः ।

पुत्रि रात्रौ स्थिता कुत्र किं ते मनसि वर्तते ॥ ३६॥
कन्या कलावती प्राह मातरं प्रति सत्वरम् ।
द्विजालयं व्रतं मातदृष्टं वांछित सिद्धिदम् ॥ ३७॥
एक दिन भूखी-प्यासी बेटी कलावती एक ब्राह्मण के घर गई, जहाँ उसने सत्यनारायण का व्रत पूजन होते देखा । उसने वहाँ बैठकर कथा सुनी तथा प्रसाद लेकर रात्रि को अपने घर लौटी । घर जाने पर कलावती से उसकी माता ने प्रेमपूर्वक कहा कि बेटी रात में कहाँ रही । तेरे मन में है क्या? कलावती ने तत्काल माँ से कहा कि माता मैंने ब्राह्मण के घर पर मनोकामना पूर्ण करने वाला व्रत होते देखा है । मैं वहीं थी ।
तच्छ्रुत्वा कन्यकावाक्यं व्रतं कर्तउ समुद्यता ।
सा मुदा तु वणिग्भार्या सत्यनारायणस्य च ॥ ३८॥
व्रतं चक्रे सैव साध्वी बन्धुभिःस्वजनै सह ।
भतृर्जामातरौ क्षिप्रमागच्छेतां स्वमाश्रमम् ॥ ३९॥
अपराधं च मे भर्तुर्जामातुः क्षंतुमर्हसि ।
व्रतेनानेन तुष्टोऽसौ सत्यनारायणः प्रभुः ॥ ४०॥
दर्शयामास स्वप्नं ही चंद्रकेतुं नृपोत्तमम् ।
बन्दिनौ मोचय प्रातर्वणिजौ नृपसत्तम ॥ ४१॥
देयं धनं च तत्सर्वं गृहीतं यत्त्वयाऽधुना ।
नो चेत्त्वां नाशयिष्यामि सराज्य धनपुत्रकम् ॥ ४२॥
कन्या के वचन सुनकर वैश्य की पत्नी तत्काल सत्यनारायण का व्रत करने को तैयार हो गई । साध्वी लीलावती ने अपने बंधु-बांधवों के साथ व्रत किया और माँगा कि मेरे पति और दामाद घर लौट आएँ । लीलावती ने प्रार्थना की कि सत्यनारायण प्रभु उसके पति और दामाद के अपराध क्षमा करें । इस व्रत के प्रभाव स्वरूप, सत्यनारायण भगवान प्रसन्न हुए । राजा चंद्रकेतु को स्वप्न दिया कि वह सवेरे ही दो वैश्यों को मुक्त कर दे । छीना हुआ उनका धन लौटा दे । यदि ऐसा नहीं किया गया तो वे धन और पुत्रों सहित राजा के राज्य का नाश कर देंगे ।
एवमाभाष्यराजानं ध्यानगम्योऽभवत्प्रभुः ।
ततः प्रभातसमये राजा च स्वजनैः सह ॥ ४३॥
उपविश्य सभामध्ये प्राह स्वप्नं जनं प्रति ।
बद्धौ महाजनौ शीघ्रं मोचय द्वौ वणिक्सुतौ ॥ ४४॥
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा मोचयित्वा महाजनौ ।
समानीय नृपस्याग्रे प्राहुस्ते विनयान्विताः ॥ ४५॥
आनीतौ द्वौ वणिक्यपुत्रौ मुक्तौ निगडबंधनात् ।

ततो महाजनौ नत्वा चंद्रकेतुं नृपोत्तम् ॥ ४६॥
स्मरंतौ पूर्ववृत्तांतं नोचतुर्भयविह्वलौ ।
राजावणिक्सुतौ वीक्ष्य वचः प्रोवाच सादरम् ॥ ४७॥
इतना बताने के बाद श्री भगवान की स्वप्न वाणी मौन हो गई ।
प्रातःकाल राजा ने अपने स्वजनों एवं सभासदों को स्वप्न के संबंध
में बताया । और आदेश दिया कि बंदी वैश्यों को तत्काल छोड़
दिया जाए । राजा की आज्ञा पाकर राजा के सिपाही विनम्र भाव से दोनों
वैश्य पुत्रों को बंधन के बिना राजा के समीप लाए । दोनों वैश्यों ने
चंद्रकेतु को नमस्कार किया । पिछली दशा के डर से व्याकुल वैश्य
पुत्र कुछ नहीं बोले । राजा ने दोनों वैश्यों को देख आदर से बोला ।
देवात्प्राप्तं महद्दुःखमिदानीं नास्ति वै भयम् ।
दता निगडसंत्यागं क्षौर कर्माद्यकारयत् ॥ ४८॥
वस्त्रालंकारकंदत्त्वा पारितोष्य नृपश्च तौ ।
पुरस्कृत्य वणिक्पुत्रौ वचमातोषयद्भृशम् ॥ ४९॥
पुरानीतं तुयद्द्रव्यं द्विगुणीकृत्य दत्तवान् ।
प्रोवाज तौ ततो राजा गच्छ साधो निजाश्रमम् ॥ ५०॥
राजानं प्रणिपत्याह गंतव्यं त्वत्प्रसादतः ।
इत्युक्त्वा तौ महावैश्यौ जग्मतुः स्व गृहं प्रति ॥ ५१॥
भाग्य ने आपको यह कष्ट दिया है । अब डरने की बात नहीं है ।
इसके बाद वैश्यों की बेड़ियाँ कटवाकर उनकी हजामत बनवाई ।
तब वस्त्र गहने आदि से उन्हें पुरस्कृत किया तथा प्रसन्न किया ।
अपने शब्दों से भी उनका संतोष किया । जो धन वैश्यों का छीना
था वह दुगना कर लौटा दिया । राजा ने कहा हे साधु वैश्य तुम
अब अपने घर जाओ । दोनों वैश्यों ने राजा को प्रणाम किया और कहा
कि आपकी कृपा से हम अपने घर लौट जाएँगे । इस प्रकार दोनों
वैश्य अपने घर के लिए चल प्णअड़े ।
॥ इति श्रीस्कन्द पुराणे रेवाखंडे
सत्यनारायण व्रत कथायां तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥
चतुर्थोऽध्यायः
सूत उवाच
यात्रां तु कृतवान् साधुर्मंगलायनर्पूविकाम् ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा तदा तु नगरं ययौ ॥१।
कियद्दूरं गते साधौ सत्यनारायणः प्रभुः ।
जिज्ञासां कृतवान् साधौ किमस्ति तव नौस्थितम् ॥ २॥
ततो महाजनौ मत्तौ हेलया च प्रहस्य वै ।
कथं पृच्छसि भो दंडिन् मुद्रां नेतुं किमच्छसि ॥ ३॥

लता पत्रादिकं चैव वर्तते तरणौ मम ।
निष्ठुरं च वचः श्रुत्वा सत्यं भवतु ते वचः ॥ ४ ॥
सूतजी बोले- साधु नामक वैश्य मंगल स्मरण कर ब्राह्मणों को दान दक्षिणा दे, अपने घर की ओर चला । अभी कुछ दूर ही साधु चला था कि भगवान सत्यनारायण ने साधु वैश्य की मनोवृत्ति जानने के उद्देश्य से, दंडी का वेश धर, वैश्य से प्रश्न किया कि उसकी नाव में क्या है । संपत्ति में मस्त साधु ने हँसकर कहा कि दंडी स्वामी क्या तुम्हें मुद्रा (रूपए) चाहिए । मेरी नाव मंए तो लता-पत्र ही हैं । ऐसे निठुर वचन सुन श्री सत्यनारायण भगवान बोले कि तुम्हारा कहा सच हो ।
एवमुक्त्वा गतः शीघ्रं दंडी तस्य समीपतः ।
कियद् दूरं ततो गत्वा स्थितः सिन्धुसमीपतः ॥ ५ ॥
गते दंडिनि साधुश्च कृतनित्यक्रियस्तदा ।
उत्थितां तरणिं दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा लतादिकं चैव मूर्च्छितोन्यप तद्भुवि ।
लब्धसंज्ञोवणिक्पुत्रस्ततनिश्चन्तान्वितोऽभवत् ॥ ७ ॥
तदा तु दुहितः कान्तो वचनंचेदमब्रवीत् ।
किमर्थं क्रियते शोकःशापो दत्तश्च दंडिना ॥ ८ ॥
शक्यते तेन सर्वं हि कर्तुं चात्र न संशयः ।
अतस्तच्छ्रणंयामो वाञ्छितार्थो भविष्यति ॥ ९ ॥
इतना कह दंडी वैश्य कुछ दूर समुद्र के ही किनारे बैठ गए । दंडी स्वामी के चले जाने पर साधु वैश्य ने देखा कि नाव हल्की और उठी हुई चल रही है । वह बहुत चकित हुआ । उसने नाव में लता-पत्र ही देखे तो मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर प्णअड़ा । होश आने पर वह चिंता करने लगा । तब उसके दामाद ने कहा ऐसे शोक क्यों करते हो । यह दंडी स्वामी का शाप है । वे दंडी सर्वसमर्थ हैं इसमें संशय नहीं है । उनकी शरण मंए जाने से मनवांछित फल मिलेगा ।
जामातुर्वचनं श्रुत्वा तत्सकाशं गतस्तदा ।
दृष्ट्वा च दंडिनं भक्त्या नत्वा प्रोवाज सादरम् ॥ १० ॥
क्षमस्व चापराधं मे यदुक्तं तव सन्निधो ।
एवं पुनः पुनर्नत्वा महाशोकाकुलोऽभवत् ॥ ११ ॥
प्रोवाच वचनं दंडी विलपन्तंविलोक्य च ।
मा रोदीः शृणु मद्वाक्यं मम पूजाबहिर्मुखः ॥ १२ ॥
ममाज्ञया च दुर्बुद्धि लब्धं दुःखं मुहुर्मुहुः ।
तच्छ्रुत्वाभगवद्वाक्यं स्तुति कर्तुं समुद्यतः ॥ १३ ॥

साधू उवाच
त्वश्वायामोहिताः सर्वे ब्राह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।
न जानंति गुणन् रूपं तवाश्चर्यमिदं प्रभो ॥१४॥
दामाद का कहना मान, वैश्य दंडी स्वामी के पास गया । दंडी स्वामी को प्रणाम कर सादर बोला । जो कुछ मैंने आपसे कहा था उसे क्षमा कर दें । ऐसा कह वह बार-बार नमन कर महाशोक से व्याकुल हो गया । वैश्य को रोते देख दंडी स्वामी ने कहा मत रोओ । सुनो! तुम मेरी पूजा को भूलते हो । हे कुबुद्धि वाले! मेरी आज्ञा से तुम्हें बारबार दुःख हुआ है । वैश्य स्तुति करने लगा । साधु बोला- प्रभु आपकी माया से ब्रह्मादि भी मोहित हुए हैं । वे भी आपके अद्भुत रूप गुणों को नहीं जानते ।
मूढोऽहंत्वां कथं जाने मोहितस्तव मायया ।
प्रसीद पूजयिष्यामि यथा विभवविस्तरैः ॥१५॥
पुरा वित्तं च तत्सर्वं त्राहि माम् शरणागतम् ।
श्रुत्वा भक्तियुतं वाक्यं परितुष्टो जनार्दनः ॥१६॥
वरं च वांछितं दत्त्वा तत्रैवांतर्दधे हरिः ।
ततो नावं समारूह्य दृष्ट्वा वित्तप्रपूरिताम् ॥१७॥
कृपया सत्यदेवस्य सफलं वांछितं मम ।
इत्युक्त्वा स्वजनैः सार्धं पूजां कृत्वा यथाविधिः ॥१८॥
हर्षेण चाभवत्पूर्णः सत्यदेवप्रसादतः ।
नावं संयोज्ययत्नेन स्वदेशगमनं कृतम् ॥१९॥
हे प्रभु! मुझ पर प्रसन्न होइए । मैं माया से भ्रमित मूढ़ आपको कैसे पहचान सकता हूँ । कृपया प्रसन्न होइए । मैं अपनी सामर्थ्य से आपका पूजन करूँगा । धन जैसा पहले था वैसा कर दें । मैं शरण में हूँ । रक्षा कीजिए । भक्तियुक्त वाक्यों को सुन जनार्दन संतुष्ट हुए । वैश्य को उसका मनचाहा वर देकर भगवान अंतर्धान हुए । तब वैश्य नाव पर आया और उसे धन से भरा देखा । सत्यनारायण की कृपा से मेरी मनोकामना पूर्ण हुई है, यह कहकर साधु वैश्य ने अपने सभी साथियों के साथ श्री सत्यनारायण की विधिपूर्वक पूजा की । भगवान सत्यदेव की कृपा प्राप्त कर साधु बहुत प्रसन्न हुआ । नाव चलने योग्य बना अपने देश की ओर चल प्णअड़ा ।
साधुर्जामातरं प्राह पश्य रत्नपुरीं मम ।
दूतं च प्रेषयामास निजवित्तस्य रक्षकम् ॥२०॥
ततोऽसौ नगरं गत्वा साधुभार्यां विलोक्य च ।
प्रोवाच वांछितं वाक्यं नत्वा बद्धांजलिस्तदा ॥२१॥
निकटे नरस्यैव जामात्रा सहितो वणिक् ।

आगतो बन्धुवर्गैश्च वित्तैश्च बहुभिर्युतः ॥ २२॥
श्रुत्वा दूतमुखाद्वाक्यं महाहर्षवती सती ।
सत्यपूजां ततः कृत्वा प्रोवाच तनुजां प्रति ॥ २३॥
व्रजामि शीघ्रमागच्छ साधुसंदर्शनाय च ।
इति मातृवचः श्रुत्वा व्रतं कृत्वा समाप्य च ॥ २४॥
अपने गृह नगर के निकट वैश्य अपने दामाद से बोला- देखो वह मेरी रत्नपुरी है । धन के रक्षक दूत को नगर भेजा । दूत नगर में साधु वैश्य की स्त्रीसे हाथ जोड़कर उचित वाक्य बोला । वैश्य दामाद के साथ तथा बहुत-सा धन ले संगी-साथी के साथ, नगर के निकट आ गए हैं । दूत के वचन सुन सती स्त्री बहुत प्रसन्न हुई । भगवान सत्यनारायण की पूजा पूर्ण कर अपनी बेटी से बोला । मैं साधु के दर्शन के लिए चलती हूँ । तुम जळी आओ अपनी माँ के वचन सुन पुत्री ने भी व्रत समाप्त माना ।
प्रसादं च परित्यज्य गता सापि पतिं प्रति ।
तेन रूष्टः सत्यदेवो भर्तारं तरणिं तथा ॥ २५॥
संहृत्य च धनैः सार्धं जले तस्यावमज्जयत् ।
ततः कलावती कन्या न विलोक्य निजं पतिम् ॥ २६॥
शोकेन महता तत्र रूदती चापतद् भुवि ।
दृष्ट्वा तथा निधां नावं कन्या च बहुदुःखिताम् ॥ २७॥
भीतेन मनसा साधुः किमाश्चर्य मिदं भवेत् ।
चिंत्यमानाश्चते सर्वेबभूवुस्तरणिवाहकाः ॥ २८॥
ततो लीलावती कन्यां दृष्ट्वा-सा विह्वलाभवत् ।
विललापातिदुःखेन भर्तारं चेदमब्रवीत ॥ २९॥
प्रसाद लेना छोड़ अपने पति के दर्शनार्थ चल प्णअड़ी । भगवान सत्यनारायण इससे रूष्ट हो गए और उसके पति तथा धन से लदी नाव को जल में डुबा दिया ॥ २५॥ कलावती ने वहाँ अपने पति को नहीं देखा । उसे ब्णअड़ा दुःख हुआ और वह रोती हुई भूमि पर गिर गई । नाव को डूबती हुई देखा । कन्या के रूदन से डरा हुआ साधु वैश्य बोला- क्या आश्चर्य हो गया । नाव के मल्लाह भी चिंता करने लगे । अब तो लीलावती भी अपनी बेटी को दुःखी देख व्याकुल हो पति से बोली ।
इदानीं नौकयासार्धं कथंसोऽभूदलक्षितः ।
न जाने कस्य देवस्य हेलया चैव सा हृता ॥ ३०॥
सत्यदेवस्य माहात्म्यं ज्ञातु वा केन शक्यते ।
इत्युक्त्वा विललापैव ततश्च स्वजनैःसह ॥ ३१॥
ततो लीलावती कन्यां क्रौडे कृत्वा रूरोदह ।
ततः कलावती कन्या नष्टे स्वामिनिदुःखिता ॥ ३२॥

गृहीत्वापादुके तस्यानुगतुंचमनोदधे ।
कन्यायाश्चरितं दृष्ट्वा सभार्यः सज्जनोवणिक् ॥ ३३॥
अतिशोकेनसंतप्तश्चिन्तयामास धर्मवित् ।
हृतं वा सत्यदेवेन भ्रांतोऽहं सत्यमायया ॥ ३४॥
इस समय नाव सहित दामाद कैसे अदृश्य हो गए हैं । न जाने किस देवता ने नाव हर ली है । प्रभु सत्यनारायण की महिमा कौन जान सकता है । इतना कह वह स्वजनों के साथ रोने लगी । फिर अपनी बेटी को गोद में ले विलाप करने लगी । वहाँ बेटी कलावती अपने पति के नहीं रहने पर दुखी हो रही थी । वैश्य कन्या ने पति की च्अड़ाऊ लेकर मर जाने का विचार किया । स्त्री सहित साधु वैश्य ने अपनी बेटी का यह रूप देखा । धर्मात्मा साधु वैश्य दुःख से बहुत व्याकुल हो चिंता करने लगा । उसने कहा कि यह हरण श्री सत्यदेव ने किया है । सत्य की माया से मोहित हूँ ।
सत्यपूजां करिष्यामि यथाविभवविस्तरैः ।
इति सर्वान् समाहूय कथयित्वा मनोरथम् ॥ ३५॥
नत्वा च दण्डवद् भूमौसत्यदेवं पुनःपुनः ।
ततस्तुष्टः सत्यदेवो दीनानां परिपालकः ॥ ३६॥
जगाद वचनंचैनं कृपया भक्तवत्सलः ।
त्यक्त्वा प्रसादं ते कन्यापतिं द्रष्टुं समागता ॥ ३७॥
अतोऽदृष्टोऽभवत्तस्याः कन्यकायाः पतिर्ध्रुवम् ।
गृहं गत्वा प्रसादं च भुक्त्वा साऽऽयति चेत्पुनः ॥ ३८॥
लब्धभर्त्रीसुता साधो भविष्यति न संशयः ।
कन्यका तादृशं वाक्यं श्रुत्वा गगनमण्डलात ॥ ३९॥
सबको अपने पास बुलाकर उसने कहा कि मैं सविस्तार सत्यदेव का पूजन करूँगा । दिन प्रतिपालन करने वाले भगवान सत्यनारायण बारंबार प्रणाम करने पर प्रसन्न हो गए । भक्तवत्सल ने कृपा कर यह वचन कहे । तुम्हारी बेटी प्रसाद छोड़ पति को देखने आई । इसी के कारण उसका पति अदृश्य हो गया । यदि यह घर जाकर प्रसाद ग्रहण करे और फिर आए । तो हे साधु! इसे इसका पति मिलेगा इसमें संशय नहीं है । साधु की बेटी ने भी यह आकाशवाणी सुनी ।
क्षिप्रं तदा गृहं गत्वा प्रसादं च बुभोज सा ।
सा पश्चात् पुनरागम्य ददर्श सुजनं पतिम् ॥ ४०॥
ततःकलावती कन्या जगाद पितरं प्रति ।
इदानीं च गृहं याहि विलम्बं कुरूषेकथम् ॥ ४१॥
तच्छ्रुत्वा कन्यकावाक्यं संतुष्टोऽभूद्वणिक्सुतः ।
पूजनं सत्यदेवस्य कृत्वा विधिविधानतः ॥ ४२॥

धनैर्बंधुगणैः सार्द्धं जगाम निजमन्दिरम् ।
पौर्णमास्यां च संक्रान्तौ कृतवान्सत्यपूजनम् ॥ ४३॥
इहलोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपरं ययौ ।
अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविर्वजितम् ॥४४।
तत्काल वह घर गई और प्रसाद प्राप्त किया । फिर लौटी तो अपने सजन पति को वहाँ देखा । तब उसने अपने पिता से कहा कि अब घर चलना चाहिए देर क्यों कर रखी है । अपनी बेटी के वचन सुन साधु वैश्य प्रसन्न हुआ और भगवान सत्यनारायण का विधि-विधान से पूजन किया । अपने बंधु-बांधवों एवं जामाता को ले अपने घर गया । पूंणिमा और संक्रांति को सत्यनारायण का पूजन करता रहा । अपने जीवनकाल में सुख भोगता रहा और अंत में श्री सत्यनारायण के वैकुंठ लोक गया, जो अवैष्णवों को प्राप्य नहीं है और जहाँ मायाकृत (सत्य, रज, तम) तीन गुणों का प्रभाव नहीं है ।
॥ इति श्री स्कन्द पुराणे रेवाखंडे
सत्यनारायण व्रत कथायां चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥
पंचमोऽध्यायः
सूत उवाच
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि श्रुणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
आसीत तुंगध्वजो राजा प्रजापालनतत्परः ॥१॥
प्रसादं सत्यदेवस्य त्यक्ता दुःखमवाप सः ।
एकदा स वनं गत्वा हत्वा बहुविधान्पशून् ॥२॥
आगत्य वटमूलं च दृष्ट्वा सत्यस्य पूजनम् ।
गोपाः कुर्वंरंति संतुष्टा भक्तियुक्ताः सबांधवाः ॥३॥
राजा दृष्ट्वा तु दर्पेण न गत्वा न ननाम सः ।
ततो गोपगणाः सर्वे प्रसादं नृपसन्निधौ ॥४॥
सूतजी ने कहा हे मुनिगण सुनो! अब हम आगे की कथा कहते हैं । तुंगध्वज नामक एक राजा अपनी प्रजा के पालन में तत्पर था । भगवान सत्यनारायण का प्रसाद न लेने से उसे भी दुःख हुआ । एक दिन राजा ने वन में जा बहुत प्रकार के पशुओं का वध किया । उसने वट वृक्ष की छाया में सत्यनारायण का पूजन होते देखा । बहुत संतोषपूर्वक तथा भक्ति के साथ बंधु-बांधवों को लिए गोप-ग्वाल सत्यनारायण का पूजन कर रहे थे । राजा गर्व के वश न तो पूजन स्थल के पास गया और न ही सत्यनारायण को नमन किया । फिर भी गोप-ग्वाले प्रसाद लेकर राजा के पास आए ।
संस्थाप्यं पुनरागत्यं भुक्तत्वा सर्वे यथेप्सितम् ।
ततः प्रसादं संत्यज्य राजा दुःखमवाप सः ॥५॥

तस्य पुत्रशतं नष्टं धनधान्यादिकं च यत् ।
सत्यदेवेन तत्सर्वं नाशित मम निश्चितम् ॥ ६॥
अतस्तत्रैव गच्छामि यत्र देवस्य पूजनम् ।
मनसा तु विनिश्चित्य ययौ गोपालसन्निदौ ॥ ७॥
ततोऽसौ सत्यदेवस्य पूजां गोपगणैःसह ।
भक्ति श्रद्धान्विओ भूत्वा चकारविधिना नृपः ॥ ८॥
सत्यदेव प्रसादेन धनपुत्रान्वितोऽभवत् ।
इह लोके सुखं भुक्तत्वाचांते सत्यपुरं ययौ ॥ ९॥
प्रसाद राजा के समीप रख पूजा स्थान पर लौट गए और उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया । राजा ने प्रसाद वहीं छोड़ दिया और दुःख भोगा । उसके सौ पुत्र, धन-धान्य सभी नष्ट हो गए । तब उसको निश्चित रूप से बोध हुआ कि श्री सत्यनारायण ने ही उसका सर्वस्व नष्ट कर दिया है । अतः जहाँ सत्यदेव का पूजन हो रहा था राजा वहीं जाए । यही विचार कर राजा ग्वाल-बालों के पास गया । राजा ने ग्वालों के साथ विधि-विधान से और भक्तिपूर्वक सत्यनारायण का पूजन किया । सत्यनारायण की कृपा से पुनः धन-पुत्र वाला बन गया । इस जीवन में सुख भोगकर अंत में सत्यनारायण के लोक में गया ।
य इदं कुरूते सत्यव्रतं परमदुर्लभम् ।
शृणोति च कथां पुण्यां भक्तियुक्तः फलप्रदाम् ॥ १०॥
धनधान्यादिकं तस्य भवेत्सत्यप्रसादतः ।
दरिद्रोलभतेवित्तं बद्धी मुच्येत बंधनात् ॥ ११॥
भीतो भयात्प्रमुच्येत सत्यमेव न संशयः ।
ईप्सितं च फलं भुक्तत्वा चांते सत्यपुरं व्रजेत् ॥ १२॥
इति वै कथितं विप्राः सत्यनारायण व्रतम् ।
यत्कृत्वा सर्वदुःखेभ्योमुक्तो भवति मानवः ॥ १३॥
विशेषतः कलियुगे सत्यपूजा फलप्रदा ।
केचित्कालं वदिष्यंति सत्यमीशं तमेवच ॥ १४॥
इस परम दुर्लभ सत्यनारायण व्रत को जो धारण करता है और फलदायी कथा को भक्तिपूर्वक सुनता है । उसे भगवान श्री सत्यनारायण की कृपा से धन-धान्य आदि प्राप्त होते हैं । दरिद्र व्यक्ति धन से परिपूर्ण हो जाता है । बंदी व्यक्ति का बंधन कट जाता है । भयग्रस्त का भय मिट जाता है । यह निःसंदेह सत्य है । व्यक्ति मनवांछित फल भोगकर अंत में सत्यलोक को प्राप्त हो जाता है ।
हे विप्रो! मैंने जो सत्यनारायण व्रत की कथा कही, उससे मनुष्य सभी प्रकार के दुखों से छूट जाता है । कलियुग में सत्यनारायण की पूजा विशेष रूप से फलदायी है । श्री सत्यनारायण को कोई काल,

कोई ईश्वर कोई सत्यदेव कहेंगे ।
सत्यनारायणं केचित्सत्यदेवं तथापरे ।
नानारूपधरो भूत्वा सर्वेषामीप्सित प्रदः ॥ १५ ॥
भविष्यति कलौ सत्यव्रतरूपी सनातनः ।
श्रीविष्णुना धृतं रूपं सर्वेषामीप्सितप्रदम् ॥ १६ ॥
य इदं पठे नित्यं शृणोति मुनिसत्तमाः ।
तस्य नश्यन्ति पापानि सत्यदेवप्रसादतः ॥ १७ ॥
व्रतं यस्तु कृतं पूर्वां सत्यनारायणस्य च ।
तेषां त्वपरजन्मानि कथयामि मुनीश्वराः ॥ १८ ॥
सतानंदो महाप्राज्ञः सुदामा ब्राह्मणो ह्यभूत ।
तस्मिन् जन्मनि श्रीकृष्णं ध्यात्वा मोक्षमवापह ॥ १९ ॥
इन्हें कोई सत्यदेव तो कोई सत्यनारायण कहेंगे । अनेक रूप धर ये मन चाहा फल देने वाले हैं । कलियुग में सत्यव्रत रूपी सनातन सत्यनारायण ही होंगे । सभी को मनवांच्छित फल देने के लिए भगवान विष्णु ने यह सत्यनारायण का रूप धारण कर लिया है । हे मुनिगण! जो इस कथा का नित्य पाठ करेंगे अथवा सुनेंगे, श्री सत्यनारायण की कृपा से उनके समस्त पाप नष्ट हो जाएँगे । सूतजी बोले- हे मुनीश्वरों! जिन्होंने सत्यनारायण का व्रत पहले किया था अब उनके बाद के जन्म की कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ । महान बुद्धिमान शतानंद ब्राह्मण सुदामा हुआ और श्री कृष्ण की आराधना कर मोक्ष को प्राप्त हुआ ।
काष्ठ भारवहो भिल्लो गुहराजो बभूवह ।
तस्मिञ्जन्मनिसंसेव्य रामं मोक्षं जगाम वै ॥ २० ॥
उल्कामुखो महाराजो नृप दशरथोऽभवत् ।
श्रीरंगनाथं संपूज्य श्री वैकुंठंतदाऽगमत् ॥ २१ ॥
धार्मिकः सत्यसन्धश्च साधुर्मोरध्वजोऽभवत् ।
देहार्धं क्रकचैश्छित्त्वा दत्वा मोक्षमवापह ॥ २२ ॥
तुंगध्वजो महाराजः स्वायंभुरभवत्किल ।
सर्वान्भागवतान् कृत्वा श्री वैकुंठं तदाऽगमत् ॥ २३ ॥
लक़ड़ी बेचने वाला लक़ड़हारा भील, गुहराज बना ॥ वह श्रीरामचंद्र की सेवा कर मोक्षपद का अधिकारी बना । राजा उल्कामुख महाराजा दशरथ हुए और श्रीरंगनाथ की पूजा कर बैकुंठवासी बने । धार्मिक साधु नामक वैश्य सत्यव्रतधारी मोरध्वज राजा बना । आधा शरीर आरे से चीरकर दान करने से मोक्ष को प्राप्त हुआ । राजा तुंगध्वज स्वयंभुव मनु हुए । सभी को वैष्णव पथ पर लगा, भागवत बना, श्रीवैकुंठ लोक को गए ।

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखंडे
सत्यनारायण व्रत कथायां पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥
श्री सत्यनारायणजी की आरती
जय लक्ष्मी रमणा, स्वामी जय लक्ष्मी रमणा ।
सत्यनारायण स्वामी, जन-पातक-हरणा ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
रत्न जिड़त सिंहासन, अद्भुत छवि राजे ।
नारद करत नीराजन, घंटा वन बाजे ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
प्रकट भए कलिकारन, द्विज को दरस दियो ।
बूढ़ो ब्राह्मण बनकर, कंचन महल कियो ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
दुर्बल भील कठारो, जिन पर कृपा करी ।
चंद्रचूड़ इक राजा, तिनकी विपति हरी ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
वैश्य मनोरथ पायो, श्रद्धा तज दीन्ही ।
सो फल भोग्यो प्रभुजी, फिर स्तुति किन्हीं ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
भाव-भक्ति के कारण, छिन-छिन रूप धर्यो ।
श्रद्धा धारण किन्ही, तिनको काज सरो ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
ग्वाल-बाल संग राजा, बन में भक्ति करी ।
मनवांछित फल दीन्हो, दीन दयालु हरि ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
चणअढ़त प्रसाद सवायो, कदली फल मेवा ।
धूप-दीप-तुलसी से, राजी सत्यदेवा ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥
सत्यनारायणजी की आरती जो कोई नर गावे ।
ऋषि-सिद्ध सुख-संपत्ति सहज रूप पावे ॥ जय लक्ष्मी॥। ॥

Visit http://www.webdunia.com for additional texts with Hindi meanings.

Please send corrections to sanskrit@cheerful.com
Last updated November 22, 2001